शोध

शैक्षिक तथा सामाजिक स्तरण

एक महानगर का चित्र निरूपण

सुमा चिटनिस

इस लेख में आधुनिक भारतीय शहर में असमानता का चित्रण है। सुमा चिटनिस संक्षेप में दर्शाती हैं कि कैसे शिक्षा में परतें बनी हुई हैं और कैसे भिन्न-भिन्न सामाजिक समूहों को भिन्न प्रकार की शिक्षा उपलब्ध है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था सबको समान अवसर देने के भरतीय लोकतंत्र के लक्ष्य को बाधित करती है।

एक कठिन संक्रमण

स्वतंत्रता पूर्व भारत में शिक्षा निश्चित रूप से एकांतिक (या गैर-समावेशी) थी। यह एकांतिकता कई घटकों के मिलने से पैदा हुई थी। पहला घटक तो यही धारणा थी कि ज्ञान पवित्र है और इस कारण उसे आनुष्ठानिक रूप से अपवित्र निचली जातियों को दिया नहीं जा सकता। दूसरा कारण यह तथ्य था कि देश के लिए औपचारिक शिक्षा का उपयोग बेहद सीमित था। प्रशासन संभालने के लिए सीमित संख्या में शिक्षित लोगों की आवश्यकता थी, साथ ही कुछ लेखकों, विद्वानों, चिकित्सकों, वकीलों, गणितज्ञों; आदि के लिए भी कुछ गुंजाइश थी। परन्तु अर्थव्यवस्था बुनियादी श्रम विभाजन से आगे नहीं बढ़ी थी तथा परिवार आधारित कौशल व दस्तकारी उस समाज की अधिकांश आवश्यकताओं की पूर्ति कर देते थे, जो साधारण निर्वाह या सामंती कृषि के स्तर पर था। तीसरे, न तो स्थानीय राजे-महाराजे, न उनके बाद आए ब्रिटिश औपनिवेशिक शासक जन-सामान्य की व्यापक शिक्षा के प्रति कटिबद्ध थे। वे इस सिद्धांत को मानते थे जिसे 'छनकर नीचे जाने का सिद्धांत' कहा जाता था अर्थात् उनका मानना था कि जो लाभ आम जन तक पहुंचाने चाहिएं, वे अंततः छन-छनकर शेष आबादी तक पहुंच ही जाएंगे। अंतिम और, संभवतः, सबसे महत्त्वपूर्ण कारण यह था कि हाल तक भारतीय चेतना तथा अंतरात्मा पर समानता की भावना का हमला नहीं हुआ था। शिक्षा का प्रावधान एक ऐसा सामाजिक व राजनीतिक दायित्व है जो बुनियादी मानवाधिकार होने के साथ सामाजिक गतिशीलता का उपकरण भी है। न ही यह जागरूकता थी कि सार्वजनीन शिक्षा आर्थिक प्रगति व सामाजिक विकास की आधार शिला है।

तकनीकी तथा औद्योगीकरण के उपयोग से आर्थिक विकास के स्वप्न से प्रेरित होकर तथा लोकतंत्र, समानता जाति प्रथा के उन्मूलन के आदर्शों द्वारा एक सशक्त, समेकित व प्रगतिशील राष्ट्र निर्मित करने की दृष्टि से स्वतंत्र भारत के नीति-नियोजकों ने शिक्षा को अहमियत दी। उन्होंने शिक्षा को एक मूलभूत मानवाधिकार तथा आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक बदलाव व प्रगति का उपकरण माना- भारत

के संविधान ने शुरुआत में 14 वर्ष तक के बच्चों को निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा का वादा किया।[1] संविधान शिक्षा के सभी स्तरों पर सबको समान अवसर का वादा भी करता है। और समाज के कमजोर तबकों जैसे अनुसूचित जाति (जो पहले अस्पृश्य जातियां कहलाती थीं) तथा अनुसूचित जनजातियों, जो परंपरागत रूप से शिक्षा से वंचित रखी जाती थीं, के शैक्षिक विकास के लिए विशेष प्रावधान किए गए।[2]

यह संक्रमण बेहद कठिन रहा है। निरक्षरता तथा विविध प्रकार की शैक्षिक विषमताओं का बकाया भार- उदाहरण के लिए, ग्रामीण तथा शहरी आबादी, स्त्रियों तथा पुरुषों के परिवारों के बच्चों, उच्च तथा नीची जातियों में और अमीरों तथा गरीबों में शैक्षिक अन्तरों को पाटना बेहद दुरूह कार्य था।[3] शिक्षा को सार्वजनिक बनाने तथा सभी को शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध करवाने की चेष्टाएं कई घटकों के कारण बाधित हुईं। उदाहरणार्थ, ग्रामीण तथा शहरी इलाकों में कई परिवारों के बच्चों को पढ़ने के लिए स्कूल भेज पाने की अक्षमता; या उपलब्ध करवाई गई सुविधाओं का कुशल-प्रबंधन कर पाने की सरकार की अक्षमता; व सबसे महत्त्वपूर्ण, असमानता की नई ताकतों को रोक पाने की अक्षमता जो शिक्षा के व्यापक विस्तार के कारण उभरी और जिन्होंने शिक्षा के मानकों को गिराया, योग्यताओं का अवमूल्यन किया तथा जो पाठ्यक्रम सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित थे व जो रोजगार बाजार में कीमती माने जाते थे, उनमें गला-काट स्पर्धा को स्थपित किया।

इन परिस्थितियों में भाषा-शिक्षा तथा सामाजिक स्तर विभाजन के मौजूदा रिश्तों को सुलझा उन्हें दुरुस्त करने का काम बेहद पेचीदा है। इसके लिए नई तथा पुरानी ताकतों के पारस्परिक उलझावों को सुलझाना होगा जो शिक्षा में और शिक्षा के द्वारा असमानताएं पैदा करती हैं। साथ ही इन दोनों प्रकार की ताकतों की अंतःक्रिया से जो तनाव जन्मते हैं, उन निहितार्थों को भी गहरी संवेदनशीलता के साथ निपटना होगा। यह आलेख ऐसा महत्त्वाकांक्षी प्रयास नहीं है। मुम्बई महानगर के कुछ उदाहरणों के माध्यम से यह आलेख उक्त शहरी गरीबों तथा अनुसूचित जातियों की परिस्थिति के कुछ पक्ष प्रस्तुत करता है।

स्कूली शिक्षा के प्रावधान

मुम्बई देश का पहला शहर था जिसने निःशुल्क व अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की नीति को अपनाया (1927 में) तथा उसका नगर निगम (म्यूनिसिपल कार्पोरेशन) 1907 से ही निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध करवाता रहा है।[4] फिलहाल शहर की 1,298 (कुल 2,036 में से) प्राथमिक शालाएं महानगर निगम (म्यूनिसिपैलटी) के स्वामित्व में हैं और उसके द्वारा प्रबंधित हैं। इनमें केवल दो केंद्र सरकार की हैं, पर शेष निजी संस्थओं की है और उनके ही द्वारा प्रबंधित हैं।

गरीबों के लिए माध्यमिक शिक्षा का प्रावधान मुम्बई में इतना उदार नहीं है। यहां के कुल 795 माध्यमिक शालाओं में से मात्र 57 ही नगर निगम की हैं। शेष निजी स्वामित्व तथा प्रबंध के तहत संचालित हैं। निगम की 1,298 प्राथमिक शालाएं तकरीबन एक लाख बच्चों की सेवाएं देती हैं जो शहर के प्राथमिक शिक्षा पाने वाले कुल बच्चों का लगभग 72 प्रतिशत है। वे दस मातृभाषाओं (वर्नाक्युलर) में शिक्षा देती हैं और कोई शुल्क नहीं लेतीं। इसके विपरीत निजी शालाओं में, धर्मार्थ संस्थाओं के अलावा, फीस ली जाती है जो 4-5 रुपए प्रतिमाह से लेकर रुपए 300 से भी अधिक होती है। इस स्थिति में मुम्बई को ऐसा शहर मानना चाहिए, जहां प्राथमिक शिक्षण की अच्छी व्यवस्था है जो शहरी गरीबों को शैक्षिक समानता के पक्ष में है। परन्तु करीबी दृष्टि डालने पर स्थिति फिर भी संतोषजनक नहीं लगती।

शिक्षण की गुणवत्ता में अंतर

ऊंची फीस एक हद तक केवल 'अपवर्जन' (एक्सक्लूसिवनैस) को ही सुरक्षित करती है। पर फीस में बेहतर भौतिक सुविधाएं व परिवेश, बेहतर शैक्षिक सहायक सामग्री, प्रयोगशाला, पुस्तकालय व अन्य अकादमिक सुविधाएं, छात्र-शिक्षक अनुपात, पाठ्यक्रम में विकल्प, विविध तथा व्यवस्थित पाठ्येत्तर गतिविधियां, आनुभविक अवसर तथा अनुभव की कीमत भी शामिल होती है, जो मिलकर छात्र का समग्र विकास करने तथा स्कूल समापन प्रमाणपत्र (माध्यमिक स्कूल सर्टिफिकेट या एसएससी) में बेहतर प्रदर्शन सुनिशिचित करते हैं। एसएससी परीक्षा इसलिए बेहद महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वही छात्रों के बेहतर विश्वविद्यालयों व पाठ्यक्रमों में प्रवेश की संभावनाएं तय करती है।[5]

अपेक्षा के अनुरूप जो माता-पिता अपने बच्चों को निजी स्कूलों में भेजने की औकात रखते हैं, जो उन्हें ये 'अतिरिक्त' साधन-सुविधाएं उपलब्ध करवाए, वे उन्हें निजी शालाओं में ही भेजते हैं। क्योंकि ऐसे छात्रों के माता-पिता शैक्षिक व व्यावसायिक रूप से अच्छी स्थिति में होते हैं। इन स्कूलों की मजबूती भी बढ़ती है क्योंकि तब उनका छात्र-समूह ऐसी पृष्ठभूमि से आता है, जो शिक्षा के लिए अनुकूल हो। इसके विपरीत, नगर निगम के निःशुल्क स्कूलों तथा निजी धर्मार्थ स्कूलों में, जहां कम फीस लगती है या मुफ्त शिक्षा दी जाती है, मेहनत-मजदूरी करने वाले वर्ग के बच्चे आते हैं। इनमें अधिकांश बच्चे शैक्षिक रूप से वंचित परिवारों के पहली पीढ़ी के छात्र होते हैं। एक ओर ये शालाएं अपने भौतिक साधन-सुविधाओं को खींचतान कर निःशुल्क शिक्षा के इच्छुक अधिक से अधिक छात्रों को दाखिला देने का संघर्ष करते हैं, वहीं, दूसरी ओर, उनको ऐसे छात्रों से भी जूझना पड़ता है, जो शिक्षण के अनुशासन से पूरी तरह अपरिचित हों,

जिन्हें जरूरी गुणों को विकसित करने में घर पर किसी प्रकार की मदद न मिल पाती हो। अनियमित उपस्थिति, खराब प्रदर्शन और ऊंची ड्रॉप-आउट दर मिलजुल कर ऐसा वातावरण बनाते हैं जो स्कूली व्यवस्था में टिके रहने को मुश्किल बना डालता है, फिर ऐसे में उच्चतर शिक्षण संस्थाओं, खासकर नामी-गिरामी संस्थाओं में प्रवेश के लिए उम्दा प्रदर्शन कर पाने की बात क्या की जाए।

नीचे दी जा रही तालिकाएं 1, 2, 3 तथा 4 मुम्बई शहर में तीनों प्रकार की शालाओं में पढ़ने वाले बच्चों की सामाजिक श्रेणियां व उनका विभाजन दर्शाती हैं। ये शालाएं नगर निगम शालाएं, सरकारी सहायता प्राप्त निजी शालाएं तथा बिना सरकारी सहायता चलने वाली निजी शालाएं हैं। लिंडसे ने मुम्बई की प्राथमिक शलाओं का एक सुविचारित[6] अध्ययन किया था, ये तालिकाएं उसी अध्ययन से ली गई हैं। इनमें तीनों प्रकार की शालाओं से रैण्डम विधि से सैम्पल लिया गया था। सामाजिक श्रेणी के जिन संकेतकों का उपयोग इस अध्ययन में किया गया, उनको पहले आबादी से उनकी संख्या की पुष्टि के लिए जांचा गया था।

यद्यपि लिंडसे के आंकड़े तीनों प्रकार के स्कूलों के छात्रों ने सामाजिक श्रेणियों के बीच अन्तरों का संकेत करते हैं, लेकिन वे नगर निगम के स्कूलों तथा कुलीन वर्ग के स्कूलों की तुलना का कोई संकेत नहीं देते। यह अंतर तालिका 5 व 6 में उभरता है, जिनमें कुलीन स्कूलों तथा नगर निगम के स्कूलों के बच्चों की सामाजिक श्रेणी की पृष्ठभूमि दी गई है। ये तालिकाएं मैंने 1982 में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) के लिए किए गए अध्ययन के लिए बनाई थीं।[7]

तालिका-1 : स्कूल के लिए प्रायोजन व पालकों का व्यवसाय

व्यवसाय	नगर निगम शालाएं	सहायता प्राप्त	सहायता हीन
सर्वहारा वर्ग	0.622	-0.220	-0.402
मजदूर वर्ग	0.466	-0.140	-0.306
कारीगर	-0.088	0.446	-0.357
दुकानदार	-0.166	0.208	-0.042
सफेदपोश कार्यकर्ता	-0.536	0.149	-0.387
वादीय पेशे	-0.278	-0.443	0.720

(X^2 [10] = 536.01, N= 4443)

तालिका-2 : स्कूल प्रायोजन तथा पालकों की आय प्रतिमाह

आय प्रतिमाह	नगर निगम स्कूल	सहायता प्राप्त	सहायता हीन
0-99	0.833	-0.366	-0.518
100-199	1.362	-0.347	-1.015
200-299	9.726	0.002	-0.730
300-399	0.469	-0.025	-0.449
400-599	-0.324	0.062	0.262
600-999	-1.058	0.344	0.714
1000+	-2.059	0.329	1.730

(X^2 [12] = 1541.96, N= 4172)

तालिका-3 : स्कूल प्रायोजन तथा पिता की शिक्षा

शिक्षण के कार्य	नगर निगम स्कूल	सहायता प्राप्त	सहायताहीन
0	1.197	-0.714	-0.482
1-4	*0.778*	*-0.078*	-0.700
5-7	*0.357*	*-0.046*	-0.311
8-10	*-0.128*	*0.325*	-0.997
11	*-0.609*	*0.220*	0.369
12-20	-1.595	0.293	1.303

तालिका-4 : स्कूल प्रायोजन व माता की शिक्षा

शिक्षण के कार्य	नगर निगम स्कूल	सहायता प्राप्त	सहायताहीन
0	1.658	-0.675	-0.963
1-4	0.975	-0.143	-0.832
5-7	0.479	-0.088	-0.390
8-10	-0.217	0.070	0.147
11	-1.131	0.412	0.718
12-20	-1.764	0.624	1.348

गरीबों की शिक्षा के सूचक के रूप में नगर निगम के स्कूल

आबादी के सामाजिक तथा आर्थिक रूप से वंचित तबकों के बच्चे नगर निगम द्वारा संचालित स्कूलों में पढ़ते हैं, यह तथ्य सुस्थापित है। अतः हम नगर निगम के स्कूलों के बच्चों पर ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं। 1981 में मुम्बई म्यूनिसिपल कॉर्पोरेशन के शिक्षा विभाग ने स्कूलों में ड्राप-आउट, असफलता, गतिरोध तथा अनुपस्थिति संबंधी एक अध्ययन किया था।[8] इस अध्ययन के आंकड़े महत्त्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करते हैं :

तालिका-5 : स्कूल प्रायोजन तथा माता पिता की साझी आय

माता पिता की साझी आय	नगर निगम स्कूल	प्रतिष्ठित स्कूल
50 रुपये तक	3 (0.46)	0 (0.00)
51-100	9 (1.38)	0 (0.00)
101-150	16 (2.45)	0 (0.00)
151-200	28 (4.28)	0 (0.00)
201-300	106 (16.21)	0 (0.00)
301-400	140 (21.41)	0 (0.00)
401-500	134 (20.49)	0 (0.00)
501-600	56 (8.56)	0 (0.00)
601-800	66 (10.09)	2 (0.68)
801-1000	41 (6.27)	12 (4.05)
1001-1500	14 (2.14)	16 (5.41)
1501-2000	6 (0.92)	42 (14.19)
2001-3000	0 (0.00)	62 (20.95)
3001-4000	1 (0.15)	52 (17.57)
4001-5000	0 (0.00)	53 (17.91)
5001-7500	0 (0.00)	27 (9.12)
7501-10000	0 (0.00)	7 (2.36)
10001-15000	0 (0.00)	8 (2.70)
15001-20000	0 (0.00)	1 (0.34)
20001 - अधिक	0 (0.00)	4 (1.35)
बताया नहीं	28 (4.28)	9 (3.04)
लागू नहीं	6 (0.92)	1 (0.34)
कुल	**654 (100.00)**	**296 (100.00)**

इस अध्ययन का सैम्पल सबका प्रतिनिधित्व करने वाला था। इसमें मुम्बई के कुल 1,298 नगर निगम प्राथमिक शालाओं मे से 95 (7 प्रतिशत) स्कूल शामिल थे। साथ ही अकादमिक वर्ष 1972-73, 1973-74 तथा 1976-77 में प्रथम कक्षा में दाखिल हुए छात्रों के अनुवर्तन (फॉलो-अप) की विस्तृत सूचनाएं भी शामिल थीं। इन 95 शालाओं में से 47 शालाओं में कक्षा-7 तक पढ़ाई की व्यवस्था थी। शेष में कक्षा-4 तक। कक्षा-7 तक की शालाओं का सैम्पल को बेहतर प्रदर्शन व "औसत प्रदर्शन" में बांटा गया था। ये आंकड़े तालिका-7 में दिए गए हैं।

तालिका-6 : स्कूल प्रायोजन तथा पिता की शिक्षा

पिता की शिक्षा	नगर निगम स्कूल	प्रतिष्ठित स्कूल
निरक्षर	94 (14.37)	1 (0.34)
स्कूल नहीं गए पर साक्षर	2 (0.30)	0 (0.00)
प्राथमिक स्कूल	138 (21.10)	0 (0.00)
एसएससी से नीचे	278 (42.50)	2 (0.68)
एसएससी या समस्तरीय	91 (13.91)	29 (9.80)
एसएससी तथा तकनीकी डिप्लोमा	0 (0.00)	11 (3.72)
कॉलेज स्तर की कुछ शिक्षा	13 (1.99)	23 (7.77)
गैर-व्यावसायिक स्नातक	10 (1.53)	72 (24.32)
व्यावसायिक स्नानतक	1 (0.15)	84 (28.39)
गैर-व्यावसायिक स्नातकोत्तर	1 (0.18)	19 (6.42)
व्यवसायिक स्नातकोत्तर	0 (0.00)	38 (12.84)
डॉक्टरेट/उत्तर डॉक्टरेट	0 (0.00)	13 (4.39)
बताया नहीं	13 (1.99)	2 (0.68)
लागू नहीं	13 (1.99)	2 (0.68)
कुल	**654 (100.00)**	**296 (100.00)**

एसएससी. - माध्यमिक स्कूल समापन प्रमाण पत्र

ड्राप-आउट तथा असफलता

क्योंकि नगर निगम के आंकड़ों से अनुत्तीर्ण रहे छात्रों की विस्तृत जानकारी नहीं मिलने के कारण जिन तीन नगर निगम स्कूलों का अवलोकन किया गया था उनमें से एक से प्राथमिक आंकड़े एकत्रित किए गए। निश्चित रूप से ये आंकड़े सभी नगर निगम शालाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करते, फिर भी उनसे यह संकेत तो मिलता है कि बच्चे किस प्रकार अटकते हैं। इस स्कूल में 395 बच्चे 1975-76 के सत्र में पहली कक्षा में दाखिल हुए थे। सात वर्षों बाद (अर्थात् 1982 में) केवल 22 (5 प्रतिशत) बच्चे ही कक्षा-7 में पहुंचे थे। 244 (62 प्रतिशत) बच्चे स्कूल छोड़ चुके थे (ड्राप-आउट) या अलग-अलग समय स्थानान्तरण प्रमाण पत्र ले जा चुके थे। बचे हुए 129 (33 प्रतिशत), छात्र लगातार अनुत्तीर्ण रह निचली कक्षाओं में थे। उनकी स्थिति इस प्रकार थी :

कक्षा	संख्या	प्रतिशत
कक्षा 1	0	0
कक्षा 2	3	(2)
कक्षा 3	12	(9)
कक्षा 4	18	(14)
कक्षा 5	55	(43)
कक्षा 6	41	(32)
कुल	129	(100)

इसका मतलब हुआ कि 1975-76 के शिक्षण सत्र में जिन छात्रों ने प्रवेश लिया था, उनमें से 33 (कुल संख्या के 8.4 प्रतिशत) छात्र 1982 में भी स्कूल में ही थे और अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी नहीं कर पाए थे। यह कोई नहीं जानता कि उन्हें प्राथमिक शिक्षा पूरी करने में कितना समय लगेगा। न ही कोई यह जानता है कि जो 5 एवं 6 में अटके 96 छात्र (25.3 प्रतिशत) कक्षा-7 में जाने के लिए कितना वक्त लेंगे। क्या ये बच्चे स्कूली शिक्षण पूरा कर सकेंगे ? या बार-बार अनुत्तीर्ण होना उनके भविष्य को ही कुंठित कर देगा ? अगर ऐसा हुआ तो उन्हें तथा उनके परिवारों को किस तरह की कीमत चुकानी होगी ?

अनियमित उपस्थिति

ड्राप-आउट का मतलब पूरी तरह स्कूल से निकल जाना होता है, परन्तु अनियमित उपस्थिति को भी हम आंशिक रूप से पीछे हटना मान सकते हैं- खासकर तब जब ऐसा लगातार होता रहे। गरीब बच्चों के शिक्षण को सरसरी नजर से देखने पर हम इनकी उपस्थिति की कमजोरी को जान सकते हैं। दुर्भाग्य से इस मुद्दे पर व्यवस्थित सूचना उपलब्ध नहीं है। परन्तु तालिका 8 के आंकड़े, जो आइएलओ के अध्ययन के दौरान मैंने एकत्रित किए थे, इस समस्या पर प्रकाश डालते हैं।

तालिका-8 दर्शाती है कि कक्षा 2 तथा 3 के 10 से लेकर 20 प्रतिशत तक बच्चे सामान्यतः पूरे साल भर हर माह में 10 दिन से भी अधिक अनुपस्थित रहते हैं। इसके अलावा 5 से 10 प्रतिशत बच्चे लगभग 5 से 9 दिन तक अनुपस्थित रहते हैं। दस दिन से अधिक अनुपस्थित रहने वाले बच्चे बड़ी कक्षाओं के हैं। बहरहाल, अनुपस्थित

तालिका-7 : मुम्बई के नगर निगम स्कूल के छात्रों का वार्षिक प्रवेश, ड्रॉप-आउट तथा प्रदर्शन

बैच	अकादमिक वर्ष	कक्षा	प्रमाण पत्र लेकर गए	प्रमाण पत्र बिना छोड़ा	उत्तीर्ण व पदोन्नत	अनुत्तीर्ण तथा रोक लिया गया
क* प्रवेश 1972-73 (17 स्कूल)	1972-73	1	1	22	55	22
	1975-76	4	9	32	20	39
	1978-79	7	14	33	9	44
ख* प्रवेश 1973-74 (25 स्कूल)	1973-74	1	3	26	63	8
	1976-77	4	11	35	24	30
	1979-80	7	18	36	11	35
ग+ प्रवेश 1976-77 (55 स्कूल)	1976-77	1	3	18	55	24
	1979-80	4	11	25	18	46

*दो उच्च प्राथमिक शालाओं के छात्र; + निम्न प्राथमिक शालाओं के छात्र

तालिका-8 : छात्रों की अनुपस्थिति कक्षा एवं माह वार प्रदर्शन

कक्षा	दिनों की संख्या	जुलाई	अगस्त	सितम्बर	अक्टूबर	नवम्बर	दिसम्बर	जनवरी	फरवरी	मार्च
कक्षा 1	3-5	8.5	5.6	4.0	1.2	6.2	6.6	4.1	3.8	8.7
	6-9	5.0	3.8	1.2	1.7	3.0	0.5	2.3	4.1	4.9
	10+	30.6	15.7	17.3	13.8	20.2	19.0	21.2	13.9	10.6
कक्षा 2	3-5	4.0	7.1	8.9	4.8	6.8	7.5	4.9	1.9	2.2
	6-9	1.7	1.8	3.0	0.6	2.4	2.7	2.5	2.2	2.2
	10+	28.2	19.2	11.9	10.7	16.2	16.4	14.8	14.7	15.0
कक्षा 3	3-5	3.5	8.3	3.5	4.3	6.2	6.7	1.5	2.0	4.3
	6-9	0.8	1.2	1.6	3.5	3.5	1.9	1.2	0.4	2.4
	10+	16.5	11.1	10.9	10.95	12.4	11.1	11.2	9.4	8.7
कक्षा 4	3-5	5.7	4.8	10.3	1.2	13.5	11.1	6.9	9.6	5.7
	6-9	2.8	3.6	2.4	1.6	1.6	1.2	1.2	2.9	1.2
	10+	17.0	12.3	5.1	4.3	6.3	9.1	7.7	5.3	2.5
कक्षा 5	3-5	0.4	5.4	5.3	0.4	12.6	6.6	9.1	7.2	4.0
	6-9	4.6	3.1	1.4	-	5.0	4.6	3.9	1.6	0.4
	10+	15.5	4.2	3.4	3.8	5.7	5.4	5.5	3.6	1.6
कक्षा 6	3-5	8.8	4.2	7.7	1.6	12.8	2.8	8.6	9.7	4.0
	6-9	3.1	5.8	1.7	-	5.6	3.9	3.4	3.4	-
	10+	17.5	11.1	7.7	3.8	10.0	7.8	6.9	2.9	4.6
कक्षा 7	3-5	10.1	6.4	13.5	-	18.2	6.4	5.5	3.8	1.9
	6-9	1.8	4.6	4.5	1.8	5.4	2.7	0.9	0.9	2.9
	10+	17.4	8.3	-	7.2	8.2	5.4	8.3	8.6	4.8

रहने की प्रवृत्ति स्कूल की सभी कक्षाओं में काफी ऊंची है, खासकर तब, जब जुलाई में नया स्कूल सत्र प्रारंभ होता है।

तालिका-8 अनुपस्थिति को 'औसत' प्रवेश के प्रतिशत के रूप में दर्शाती है। नगर निगम के स्कूलों में प्रत्येक कक्षा का नामांकन पूरे साल भर स्थिर नहीं रहता। छात्र कभी भी प्रवेश लेते हैं और निकल भी जाते हैं (ड्राप-आउट)। सामान्यतः, शिक्षा सत्र की शुरुआत में जुलाई व अगस्त के नामांकन सबसे कम रहता है, सितम्बर से दिसम्बर के बीच बढ़ता है और उसके बाद फिर से घटता है। तालिका में दर्शाया गया है कि कक्षा 1 का नामांकन जुलाई में 339, अगस्त में 394 था, सितंबर, अक्टूबर, नवंबर तथा दिसंबर में यह बढ़कर 406 हुआ, तब जनवरी में घटकर 386 हुआ तथा फरवरी-मार्च में और घटकर 367 रह गया। जाहिर है कि नामांकन शिक्षा वर्ष के गुजरने के साथ क्रमशः बढ़ता है। परन्तु जनवरी के बाद घटने लगता है, संभवतः इसलिए कि मौसमी रोजगार बच्चों को आकर्षित करता है या फिर कुछ माह बाद बच्चों की रुचि स्कूल में कम हो जाती है।

शुरुआत में विलंब

स्कूल छोड़ देना (ड्रॉप-आउट), अनुत्तीर्ण होना, पिछली कक्षाओं में सड़ना तथा अनुपस्थित रहना आदि समस्याओं के साथ गरीब बच्चों की शिक्षा में एक अन्य प्रमुख खामी है; उनकी पढ़ाई-लिखाई का विलंब से शुरू होना। भारत में, सामान्यतः, बच्चों को पहली कक्षा में

तालिका-9 : मुम्बई नगर निगम स्कूलों में कक्षा 1-4 में आयु वार बच्चे

कक्षा	5-6 वर्ष	7-8 वर्ष	9 वर्ष	10 वर्ष	11 वर्ष	12 वर्ष	13-14 वर्ष	15-16 वर्ष	17-18 वर्ष	19+	कुल
कक्षा 1, 5 से 6 साल	234* (55)	142 (34)	22 (5)	11 (3)	5 (1)	- (-)	4 (1)	4 (1)	-	-	422 (100)
कक्षा 2, 6 से 7 साल	23* (7)	180* (54)	66 (20)	35 (11)	16 (5)	6 (2)	1 (0)	-	3 (1)	1 (0)	331 (100)
कक्षा 3, 7 से 9 साल	2 (1)	74* (28)	61* (23)	54 (21)	44 (17)	19 (7)	9 (3)	1 (0)	-	-	264 (100)
कक्षा 4, 9 से 11 साल	-	25 (9)	61* (21)	82* (29)	61* (21)	22 (8)	27 (9)	5 (2)	2 (1)	-	285 (100)

5 साल की उम्र में दाखिल करने की उम्मीद रखी जाती है। परन्तु नगर निगम की एक शाला में 1975 में पहली कक्षा में दाखिल हुए बच्चों में से 153 (39 प्रतिशत) बच्चे 5 वर्ष के, 145 (37 प्रतिशत) 6 वर्ष के तथा 50 (13 प्रतिशत) 7 वर्ष के, 245 (6 प्रतिशत) 8 वर्ष के, 21 (5 प्रतिशत) 9 से 12 वर्ष के थे। विलंब से प्रवेश लेना और तब बार-बार अनुत्तीर्ण होना, दोनों मिलकर गरीब बच्चों की शिक्षा में भारी देरी करते हैं। तालिका 9 उपरोक्त शाला की 1, 2, 3 तथा 4 में पढ़ने वाले बच्चों की आयु दर्शाती है। कक्षा 1 से 3 के 51 से 61 प्रतिशत बच्चे तथा कक्षा 4 के 71 प्रतिशत बच्चे ही सही आयु के अनुरूप कक्षाओं में थे। कक्षा 1, 2 तथा 3 में खासतौर से बड़ी उम्र के बच्चों का प्रतिशत ऊंचा था। कक्षा-4 में भी कुछ बच्चे अधिक आयु के थे। यह सुझाता है कि कक्षा 1, 2 तथा 3 ऐसी कठिन बाधाएं हैं, जिन्हें पार करना मुश्किल है। कक्षा 1 और साथ ही कक्षा 2 व 3 में भी अनुत्तीर्ण होने वाले बच्चों का ऊंचा प्रतिशत बताता है कि शायद इसी कारण गरीब परिवारों के बच्चे कक्षा-4 के पहले ही स्कूल से निकल जाते हैं।

स्थिति स्पष्ट करने वाले घटक

स्थिति का विश्लेषण करने वाले शोध अध्ययन यह संकेत देते हैं कि वे सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, शैक्षिक व प्रशासनिक घटक सम्मिलित रूप से उसकी रचना करते हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण कारक गरीबी है। यह शिक्षा में कई प्रकार की बाधाएं खड़ी करती है। भारतीय जनगणना (1971) के अनुसार मुम्बई के 0 से 14 वर्ष के 37 प्रतिशत बच्चे कामकाजी हैं। सच तो यह है कि कई मामलों में उनके ही कारण परिवार का गुजारा चल पाता है। नगर निगम की एक शाला में मैंने गौर किया कि जिस समय पड़ोस के एक कारखाने में उत्पादन का काम अपने पूरे जोर पर होता, सारे के सारे बच्चे हर बार एक साथ अनुपस्थित रहते।[8]

अधिक प्रत्यक्ष रूप में गरीबी का निहित अर्थ है, सतत भूख, कुपोषण, कमजोर स्वास्थ्य और बीमारी जो स्कूल में नियमित उपस्थिति और सीखने की क्षमता में बाधक होता है। मुम्बई में इसका अर्थ बेघर होना या फिर नाम मात्र का आश्रय होना भी होता है अर्थात् गर्मी के मौसम में भयंकर गर्मी और बरसात के मौसम में हवा एवं पानी झेलना। जिनके पास सिर पर छत होती है, उनके पास भी पाखानों की सुविधा या तो नगण्य होती है या फिर होती ही नहीं, नाले बंद होते हैं, जिनका पानी बाहर रिसता है। पढ़ने के स्थान और रोशनी की व्यवस्था भी नहीं होती। गरीबी का मतलब यह भी होता है कि बच्चे शहर और गांव के बीच धकेले जाते हैं, क्योंकि माता-पिता काम को तलाशते आते-जाते रहते हैं या फिर इसका यह अर्थ भी हो सकता है कि वे शहर में ही एक से दूसरे स्थान पर, एक निर्माण स्थल से दूसरे निर्माण स्थल, एक कच्ची बस्ती से दूसरी कच्ची बस्ती में डोलते रहें, क्योंकि उनकी 'गैर-कानूनी' झोंपड़-पट्टी ढहा दी गई हो या बस्ती की 'सफाई' कर दी गई हो। इसके अलावा गरीबी के साथ जुड़ी जानी-मानी समस्याएं भी होती हैं, जैसे, भाषा या गणित संबंधी अक्षमता, अमूर्त अवधारणाओं को समझने की अक्षमता या प्रतिरूपों के श्रेणीकरण एवं उन्हें समझने तथा पहचानने की अक्षमता।

समस्या की जड़, दरअसल, यह है कि गरीबों की शिक्षा के प्रति राष्ट्रीय कटिबद्धता के बावजूद स्कूली व्यवस्था गरीबों की कमियों के अनुरूप बदली नहीं हैं। इन बच्चों के कमजोर प्रदर्शन को 'उनकी खराब क्षमता' या माता-पिता की 'उदासीनता' का नतीजा मान लिया जाता है। बच्चों के प्रदर्शन का कारण उनकी सामाजिक विकलांगता है, इसके निहितार्थ समझाने-स्वीकारने की अक्षमता साफ नजर आती है। साथ ही उनकी मजबूतियों को आधार मान वहां आगे बढ़ने तथा

गरीबी और कठोर संघर्ष के कारण उभरती उनकी अनूठी परिपक्वता, को साधते हुए शिक्षण कार्य आगे बढ़ाने में शिक्षा व्यवस्था असफल रही है। इसके विपरीत, व्यवस्था उन्हें ठीक उन्हीं खांचों में और उसी गति से बढ़ाना चाहती है जो सफेदपोश व ऊंचे तबके के परिवारों से आए मध्यवर्गीय या उच्चवर्गीय बच्चों के लिए उपयुक्त है। इन बच्चों की स्थिति के अनुरूप शिक्षण सामग्री तथा पाठ्यचर्या उपलब्ध करवाने में, उनकी उप-संस्कृतियों की निरक्षर भाषा में उनके साथ काम की आवश्यकताओं को समझने में, उन्हें क्रमशः अमूर्त अवधारणओं को समझाने में, स्कूल के समय व आवश्यकताओं और उनके दायित्वों के बीच तालमेल बैठा पाने में, मौत, कर्जे, बेरोजगारी व अनिश्चिता के घरेलू वातावरण के कारण सीखने में उनके समक्ष आने वाली बाधाओं को लांघने में उनकी मदद करने में व्यवस्था पूरी तरह असफल रही है। शहर के नगर निगम स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों की समस्याओं को सुलझाने के जो छोटे स्तर के प्रयोग किए गए हैं, वे बेहद सफल रहे थे। परन्तु, शिक्षा प्रबंधन कमोबेश लालफीताशाही से इस कदर जकड़ा हुआ है कि वह इस रचनात्मकता, पहल संकल्प व आत्म-विश्वास की छूट तक नहीं देता, जिसके बिना शिक्षक इसमें कोई बदलाव ला ही नहीं सकते।

शिक्षा तथा रोजगार

विरोधाभासी स्थिति यह है कि जहां गरीबों की शिक्षा तमाम समस्याओं से घिरी है, वहीं रोजगार पाने के लिए आवश्यक शैक्षणिक योग्यताएं लगातार बढ़ती जा रही हैं- खासकर शहरों में।[10] मुम्बई शहर में रोजगार संबंधी कई अध्ययन किए गए जो सभी यह स्पष्ट दर्शाते हैं कि रोजगार के स्थायित्व तथा आय की मात्रा दोनों का शिक्षा से सकारात्मक सह-संबंध है। उदाहरण के लिए, 1981 में रोजगार में स्थायित्व पर हुआ एक अध्ययन दर्शाता है कि सर्वेक्षण में शामिल निरक्षर दिहाड़ी मजदूरों में मात्र 48.5 प्रतिशत माह में 25 दिन से अधिक काम करते थे, वहीं जो लोग चार साल तक की पढ़ाई कर चुके लोगों में 62 प्रतिशत माह में 25 दिन काम करते थे। आईएलओ के एक अध्ययन में मुम्बई की विभिन्न झोपड़-पट्टियों में रोजगार के पैटर्न का अध्ययन इसी साल किया गया था। यह अध्ययन दर्शाता है कि तुलनात्मक रूप से अधिक स्थाई, अधिक व्यवस्थित तथा निश्चित रूप से अधिक आय वाले औपचारिक क्षेत्र में होने वाली आय अनौपचारिक क्षेत्र की तुलना में औसतन 60 प्रतिशत अधिक होती है। अध्ययन यह भी दर्शाता है कि स्व-रोजागर में भी शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण निधि सिद्ध होती है।[11]

यही अध्ययन यह भी स्पष्ट करता है कि अशिक्षित की तुलना में शिक्षित व्यक्ति औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों ही क्षेत्रों में बेहतर कमाई कर पाता है। दोनों क्षेत्रों में साझे आंकड़े दर्शाते हैं कि अशिक्षित लोगों की औसत आय रुपए 290 प्रतिमाह है, एक से चार वर्ष तक की शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की औसत आय रुपए 327 प्रतिमाह है। शिक्षा की अगली श्रेणी (अर्थात् 5 से 10 वर्ष की स्कूली शिक्षा) वाले व्यक्ति भी लगभग उतना ही कमा पाते हैं जितना पांच साल तक पढ़े-लिखे लोग। परन्तु माध्यमिक स्कूल समाप्ति (एसएससी) स्तर तक पढ़ाई आर्थिक लाभ पहुंचाती है। एसएससी डिग्रीधारियों की औसत मासिक आय रुपये 428 है अर्थात् पूर्णतः अशिक्षित लोगों की तुलना में माध्यमिक स्कूल तक पढ़ा-लिखा व्यक्ति डेढ़ी आय कर पाता है। इसी प्रकार माध्यमिक स्तर के बाद पढ़े-लिखे व्यक्ति की आय माध्यमिक स्तर वाले से 15 प्रतिशत अधिक है।[12]

उच्च शिक्षा

पहले जो चर्चा हुई वह विश्वविद्यालय की शिक्षा के महत्त्व को रेखांकित करती है। गरीबों की शिक्षा की गुणवत्ता के सीमित होने का, संभवतः, सबसे दुखद नतीजा यह है कि इस विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा पाकर ऊपर की ओर प्रगति करने की संभावनाएं प्रभावित होती हैं। आजादी के बाद भारत में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में जो व्यापक विस्तार आया, उसके साथ ही पाठ्यक्रमों और संस्थाओं की प्रतिष्ठा का मसला भी बढ़ा। चिकित्सा, इंजीनियरिंग तथा तकनीकी के पाठ्यक्रम प्रतिष्ठित माने जाने लगे, जिनसे अधिक आयु ऊंचे व्यावसायिक पद प्राप्त हो सकते थे, जबकि कला व मानवशास्त्र को नीचा माना जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक शहर में तथा अध्ययन के प्रत्येक क्षेत्र में 'प्रतिष्ठित संस्थानों' को पहचाना जा सकता है। इनके परिणाम अच्छे होते हैं, वे छात्रों को खासतौर से प्रशिक्षित करते हैं तथा सामाजिक चयन की प्रक्रिया में लाभदायी, सूक्ष्म योगदान भी करते हैं। प्रतिष्ठित पाठ्यक्रमों तथा कुलीन संस्थाओं में प्रवेश के लिए गलाकाट प्रतिस्पर्धा होती है। केवल कुछ ही छात्र (अर्थात् माध्यमिक स्तर पर सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करने वालों में से भी केवल कुछेक ही) ऐसी संस्थाओं में प्रवेश पाते हैं।

उच्च शिक्षण संस्थानों में प्रवेश की स्पर्धा में गरीब परिवारों के बच्चों के असफल होने क सीमा का अंदाज हमें माध्यमिक शिक्षा समापन एसएससी परीक्षाओं में विभिन्न प्रकार के स्कूलों- निगम संचालित स्कूल, सरकारी सहायता प्राप्त निजी स्कूल व सहायताहीन निजी स्कूलों के छात्रों के नतीजों की तुलना से लगता है। यह परीक्षा राज्य माध यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा आयोजित की जाती है तथा उच्च शिक्षा के प्रवेश की योग्यता परीक्षा होती है। एक बार फिर ध्यान दिला दें कि जहां नगर निगम संचालित स्कूलों में गरीब बच्चे पढ़ते हैं, वहां सहायता प्राप्त या सहायताहीन निजी स्कूलों में क्रमशः अधिक संपन्न आबादी के बच्चे पढ़ते हैं।

तालिका-10 : तीनों प्रकार के स्कूलों के बच्चों का एसएससी

विवरण	नगर निगम शालाएं	सहायता प्राप्त	सहायता हीन
प्रथमश्रेणी व विशेष योग्यता पाने वाले	1 (0.28)	1 (0.93)	कोई नही
प्रथमश्रेणी पाने वाले	34 (9.63)	33 (32.35)	30 (43.48)
द्वितीय श्रेणी पाने वाले	92 (26.06)	46 (45.10)	38 (55.07)
तृतीय श्रेणी पाने वाले	73 (20.68)	9 (8.82)	1 (1.45)
अनुतीर्ण होने वाले	153 (43.34)	13 (12.75)	कोई नहीं
कुल परीक्षा देने वाले	353 (100)	102 (100)	69 (100)

(कोष्ठक के आंकड़े प्रतिशत में हैं)

अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिए आरक्षण

एक दृष्टि से अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए आरक्षण की नीति इस स्थिति का पूर्वानुमान लगाने वाली है। संक्षेप में, यह नीति सुनिश्चित करती है कि उच्च शिक्षा की सभी शिक्षण संस्थाओं में एक निश्चित प्रतिशत की सीटें अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के छात्र-छात्राओं के लिए आरक्षित हों। उन्हें इस 'कोटा' में तब प्रवेश दे दिया जाता है बशर्ते वे बुनियादी योग्यता पूरी करते हों, फिर चाहे शेष आवेदकों की तुलना में उनकी स्थिति कुछ भी क्यों न रहे। समय के साथ भारत सरकार इस नीति को अमल में लाने के प्रति अधिकाधिक दृढ़ और चौकन्नी बनती गई है। फिर भी इस वंचना से निपटना कठिन रहा है।

इस बिन्दु के उदाहरण स्वरूप हम आईआईटी, मुम्बई में अनुसूचित जाति व जनजातियों के छात्रों के 'आरक्षित' प्रवेशों के संदर्भ को ले सकते हैं। सरकारी आदेशों की अनुपालना करते हुए आईआईटी 54 (25 प्रतिशत) सीटें इन समुदायों के छात्रों के लिए प्रति वर्ष आरक्षित करती है। इन सीटों के लिए भारी छूटें भी दी जाती हैं। जैसे अनुसूचित जाति व जनजाति के छात्रों के लिए प्रवेश योग्यता घटाई जाती है ताकि ये सीटें भरी जा सकें। इसके बावजूद 1973 से 1980 तक के आंकड़े स्पष्ट करते हैं कि 1973 में केवल 15 दाखिले हो सके 1974 में 37, 1975 में 27, 1976 में 27, 1980 में 27। 1978-79 के आंकड़े अनुपलब्ध थे। इन छात्रों के लिए विशेष कोचिंग कार्यक्रम भी चलाए गए, इसके बावजूद जिन छात्रों को प्रवेश दिया गया वे पाठ्यक्रम की आवश्यकता पूरी नहीं कर सके। तालिका-11 दर्शाती है कि कितने छात्र पाठ्यक्रम से निकल गए (ड्राप-आउट) और कितने बचे रहे।

तालिका-11 : आईआईटी मुम्बई में प्रवेश पाने वाले अजा व जजा छात्रों तथा 1973-1977 तक वहां टिके रहने वाले छात्रों की संख्या

1973-74	1974-75	1975-76	1976-77	1977-78	पांचवर्षीय बीटेक पाठ्यक्रम में विभिन्न वर्षों में छात्रसं.	
15	10	9	5	5	चतुर्थ वर्ष	3
(100)	(66.7)	(60)	(33.3)	(33.3)	तृतीय वर्ष	2
	37	32	26	26	चतुर्थ वर्ष	1
	(100)	(86.5)	(70.3)	(70.3)	तृतीय वर्ष	6
					द्वितीय वर्ष	19
		27	23	23	तृतीय वर्ष	3
		(100)	(85.2)	(85.2)	द्वितीय वर्ष	8
					प्रथम वर्ष	12
			27	20		
			(100)	(74.1)	द्वितीय वर्ष	10
				42	प्रथम वर्ष	10
				(100)		

नोट : कोष्ठक में दिए गए आंकड़े प्रत्येक वर्ष के अंत में बचे छात्रों का प्रतिशत बताते हैं।

स्रोत : रिपोर्ट ऑव द कमिटी एपॉइन्टेड टू कन्सिडर द प्राब्लम्स, कैव शिड्यूल्ड कास्ट/ट्राइव स्टॅडेन्स, बॉम्बे : आईआईटी, 1977

जो छात्र बचे रहे, उनकी स्थिति भी कठिन है। आईआईटी में छात्रों के अकादमिक प्रदर्शन का इस बिन्दु की ग्रेडिंग व्यवस्था में मूल्यांकन किया जाता है। छात्रों से से उपेक्षा रहती है कि वे न्यूनतम संचयी प्रदर्शन संकेतक (सीपीआई) में लगातार कम से कम 5.5 अंक लाएं। अगर कोई छात्र ऐसा नहीं कर पाता है तो उसे चेतावनी दी जाती है और एक निश्चित अवधि में प्रदर्शन को सुधारने का अवसर दिया जाता है। दूसरे शब्दों में कहें तो छात्र को परिवीक्षा में रखा जाता है। अगर छात्र तयशुदा अवधि में अपना प्रदर्शन नहीं सुधार सकता तो उसे संस्था छोड़ने की सलाह दी जाती हे। तालिका-12 उन विभिन्न छात्रों को परिवीक्षा में रखा गया या संस्थान छोड़ने का परामर्श दिया गया।

तालिका-12 : उन अजा/जजा छात्रों की संख्या जिन्हें प्रत्येक सत्र के अंत में 'परिवीक्षा' में रखा गया, या 'छोड़ने की सलाह' दी गई अथवा जिन्हें हटने को कहा गया

प्रवेश वर्ष	कुल संख्या	प्रथम सत्र	द्वितीय सत्र	चतुर्थ सत्र	छठा सत्र	आठवां सत्र	सूचना माह
1	2	3	4	5	8	7	8
1973	15	3	2	4	5	2	जुलाई 1977
1974	37	-	2	10	8	-	
1975	27	-	3	11	-	-	
1976	27	-	1	-	-	-	

पहली कतार में स्तंभ 3, 4, 5, 6 व 7 का योग कुल संख्या से अधिक है क्योंकि कुछ छात्रों का, जिन्हें परिवीक्षा पर रखा गया था, प्रदर्शन असंतोषजनक रहा और उन्हें अंततः हटने की सलाह दी गई। प्रत्येक चरण में उन्हें दर्ज किया गया है, अर्थात् उनकी गिनती दो या तीन बार हुई है।

स्रोत : तालिका-11 के समान

एक और प्रासंगिक उदाहरण है वह अध्ययन जो मैंने 1972 में किया था।[18] यद्यपि ये आंकड़े 12 वर्ष पुराने हैं, पर यह मानने का कारण है कि अनुसूचित जाति व जनजाति के छात्रों की स्थिति में तब से अब तक कोई खास बदलाव नहीं आया है। इस अध्ययन के आंकड़े बताते हैं कि 1972 में मुम्बई के विभिन्न कॉलेजों के स्नातक पाठ्यक्रमों में 2,176 अनुसूचित जाति के छात्र अध्ययनरत थे। इनमें से 1,616 छात्रों (74 प्रतिशत) कला तथा विज्ञान के स्नातक पाठ्यक्रमों में पढ़ रहे थे। इन 1,616 छात्रों के विस्तृत विश्लेषण से स्पष्ट हुआ कि इनमें से 1,480 (91 प्रतिशत) शहर के 15 कला एवं विज्ञान महाविद्यालयों में थे। मुम्बई विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित परीक्षाओं में इन कॉलेजों के प्रदर्शन के आधार पर इन महाविद्यालयों को चार श्रेणियों- क, ख, ग, घ में विभाजित किया जा सकता है। सबसे उम्दा प्रदर्शन करने वाले कॉलेज क श्रेणी में तथा सबसे निम्नतम प्रदर्शन करने वाले कॉलेज घ श्रेणी में रखे गए। पाया यह गया कि कुल 1480 अनुसूचित जाति के छात्रों में से 1,122 (96 प्रतिशत) छात्र घ श्रेणी के कॉलेजों में थे। इनमें से भी तकरीबन 55 प्रतिशत छात्र एक ही कॉलेज में दाखिल थे, जो महाविद्यालयों की श्रेष्ठक्रम सूची में नीचे से तीसरे स्थान पर था। इसके विपरीत सूची में प्रथम स्थान पर रहे कॉलेज में मात्र 5 छात्र दाखिल हुए थे तथा 'क' श्रेणी के सभी कॉलेजों को मिलाकर उनकी संख्या मात्र 5 प्रतिशत थी।

ऐसे कई उदाहरण हैं। इन दृष्टान्तों से इतना तो स्पष्ट ही होता है कि आर्थिक तथा सामाजिक रूप से वंचित आबादी के लिए यह संघर्ष बेहद कठिन है। यह सच है कि शिक्षा के कारण इन समुदायों में अभूतपूर्व गतिशीलता आई है। परन्तु जैसे-जैसे स्पर्धा की ताकत मजबूत होती गई तथा भारतीय समाज में ध्रुवीकरण बढ़ता गया है, शिक्षा में आरक्षण को उपकरण बना व्यवसायों में नौकरियों में राजनीतिक शक्ति या सामाजिक प्रतिष्ठा न्यायपूर्ण आवंटन तथा पुनर्वितरण कर पाने की ताकत की सीमाएं भी उजागर होती गईं हैं।

जाहिर है इस समस्या का समाधान कई स्तरों पर करना होगा। इस मुद्दे को सबसे सरल तरीके से शिक्षाशास्त्रीय स्तर पर सीखने की अक्षमताओं (लर्निंग डिसएबिलिटीस्) के रूप में देखा जा सकता है। सच तो यह है कि इस स्तर पर कुछ व्यक्तियों तथा समूहों ने, जो उपचारात्मक कार्यक्रमों व पहल के प्रयोग कर रहे हैं, चौंकाने वाली सफलताएं हासिल की हैं। इन कार्यक्रमों में खासतौर से डिजाइन की गई शिक्षण विधि के साथ परामर्श व संभवतः सबसे महत्त्वपूर्ण बात, देखभाल, स्नेह तथा सरोकार शामिल हैं। यहां समस्या यह आती है कि ऐसे कार्यक्रमों को कितने व्यापक स्तर पर दोहराया व फैलाया जा सकता हैं। इनके दोहराव को लक्षित कर कुछ पैकेज बनाने का कार्य किया जा रहा है, फिर भी इस विषय में शंका होती है- क्योंकि बात मात्र भौतिक संसाधानों की नहीं है बल्कि शिक्षकों में आवश्यक संवेदना, लचीलेपन तथा समर्पण की है।

दूसरे स्तर पर समस्या स्कूली शिक्षा के प्रशासन को सुचारू बनाने, उसमें बदलाव ला उसे पुनः ऊर्जावान बनाने की है ताकि स्कूल उन बच्चों की शिक्षण आवश्यकताओं को संबोधित कर सके जो 'तीन आरस्' (रीड़िंग राइटिंग एरिद्मैटिक्स्) पढ़ाने के परे जाती हो। अर्थात् समस्या केवल स्कूल की अवधि को बदलने व उसके डिजाइन के बदलने, आयु संबंधी नियमों को बदलने, प्रवेश बिन्दुओं को उपस्थिति आवश्यकताओं, शिक्षण सामग्री, मूल्यांकन-प्रणाली आदि को अधिक संवेदनशीलता से, वंचित पृष्ठभूमि से आने वाले बच्चों की आवश्यकताओं की अनुरूप बदलने की नहीं है, बल्कि ऐसी रणनीतियां विकसित करने की है जो स्कूल प्रशासन तथा विश्वविद्यालयी शिक्षा के बारे में बहुत कुछ किया जा सकता है, इसकी सीमाएं हमें तीसरे व संभवतः सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्तर पर ले जाती हैं।

इस स्तर पर देश के शिक्षा उद्देश्यों पर विचार करने पर हम बाध्य होते हैं। यह जांचना जरूरी बन जाता है कि एक ही व्यवस्था के तहत परस्पर विरोधाभासी लक्ष्य-श्रेष्ठता तथा सामाजिक न्याय को मिलाना दरअसल व्यावहारिक है, जैसा हमें पिछले दशकों के दौरान करते रहे हैं। साथ ही, यह भी आवश्यक है कि हम देश में शिक्षा की बढ़ती लालफीताशाही को भी सावधानी से जांचे और यह पूछें कि जिस प्रकार का बदलाव हम चाहते हैं, क्या वह सामाजिक आंदोलन के उत्साह व ऊर्जा के बिना संभव है ? क्या हमारे पास वह उत्साह, वह राजनीतिक इच्छा या आर्थिक संसाधन या सामाजिक प्रतिबद्धता है जो शिक्षा को सामाजिक बदलाव और विकास के प्रभावी उपकरण के रूप में इस्तेमाल कर सके ? इस प्रश्न का उत्तर तलाशने का प्रयास हमें भारत में शिक्षा की राजनीति, आर्थिकी, सामाजिकी तथा दर्शन की पेचीदा भूल-भुलैया की ओर ले जाता है। ◆

संदर्भ :

1. अनुच्छेद 45, भारतीय संविधान बाद में तात्कालिक लक्ष्य को कम महत्त्वाकांक्षी बना, प्राथमिक स्तर की शिक्षा को सार्वजनिक बनाना निर्धारित हुआ।
2. भारतीय संविधान का अनुच्छेद 46
3. 1951 में जब आजाद भारत में प्रथम पंच-वर्षीय योजना प्रारंभ की गई तब देश की आबादी का मात्र 16.7 प्रतिशत भाग साक्षर था। 1950-51 तथा 1980-81 के दरमियान प्राथमिक शालाओं में नामांकित बच्चों की संख्या 1, 91, 54, 457 से बढ़कर 7, 26, 87, 840 हो गई, परन्तु साक्षरता दर मात्र 36.2 प्रतिशत ही हो सकी।
4. देखें 'माइलस्टोन्स इन द हिस्ट्री ऑफ कम्पल्सरी एज्युकेशन एण्ड सेन्सस ऑव चिल्ड्रन इन बाम्बे, जो सुमा चिटनिस रचित 'ड्रॉप-आउटस एण्ड लो प्यूपिल अचीवमेंट अमंग द अर्बन प्रवर इन बॉम्बे, मुम्बई, टाटा इंस्टिट्यूट ऑव सोश्यल साइन्सेज, 1982 (मीमो)
5. इस आलेख के लिए एकत्रित आंकड़ों से संकेत यह मिलता है कि जहां नगर निगम संचालित स्कूलों में प्रति बालक, प्रतिवर्ष रुपए 357 व्यय किए जाते हैं, वहीं उसी इलाके के प्रतिष्ठित मिशनरी स्कूल में प्रति बालक प्रति वर्ष व्यय रुपए 954 है।
6. जे. के. लिंडसे प्राइमरी एज्युकेशन इन बॉम्बे- इन्ट्रोडक्शन इन सोश्यल स्टडी, इन्वैल्युएशन इन एज्युकेशन- इन्टर नेशनल प्रोग्रेस, खण्ड-2 संख्या-1 ऑक्सफर्ड : पर्गेमॉन प्रेस, 1978
7. सुमा चिटनिस, ड्रॉप-आउटस् एण्ड लो प्यूपिल एचिवमेंट अमंग द अर्बन पूअर इन बॉम्बे, मुम्बई ; टाटा इन्स्टिट्यूट ऑव सोशयल साइन्सेज, 1982 (मीमो)
8. ये आंकड़े मुम्बई म्यूनिलसिपल कॉरपोरेशन के शिक्षा विभाग द्वारा करवाई हुई जनगणना व सर्वेक्षण की अप्रकाशित प्रतिवेदन से लिए गए हैं।
9. देखें सुमा चिटनिस तथा सवन्नथार का प्रतिवेदन पी.जे. रिचर्डस् तथा ए. एम. थानसन की बेसिक नीडस् एण्ड द अर्बन पुअर - एन आईएल ओडब्ल्यू ई पी स्टडी, लंदन, क्रम हैल्म, 9984 - पृ. 189-207,
10. बी. एन. कोठारी 'एम्प्लायमेंट ड्यूसलिजम एण्ड एज्युकेशन क्वालिटी इन इण्डिया', मैनपावर जर्नल, खण्ड-14, संख्या-2, नई दिल्ली, इस्टिट्यूट ऑफ मैनपावर रिसर्च, 1978.
11. ब्रह्म प्रकाश, पैटर्नस् ऑव एम्प्लॉयमेंट- अमंग स्लम डवैलपर्स, आइएलओ परियोजना का प्रतिवेदन, टाटा इन्स्टिट्यूट ऑव सोश्यल बोरनोस (मेमो)
12. देखें, पूर्वोक्त। साथ ही देखें ललित देशपाण्डे, बॉम्बेज लेबर मार्केट, डिपार्टमेंट ऑव इकोनोमिक्स, यूनिवर्सिटी ऑव बॉम्बे (मीमो)
13. सुमा चिटनिस, एज्युकेशन फॉर इक्वालिटी, इक्वालिटी, इकोनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, खण्ड-7 (31-33), विशेषांक ; अगस्त 1972

भाषान्तर : पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा

सुमा चिटनिस ◆

टाटा समाज विज्ञान संस्थान, मुंबई में अध्यापन किया एवं श्रीमती नाथीबाई दामोदर थाकरसे महिला विश्वविद्यालय, मुंबई की उप-कुलपति रही हैं। ◆